Chap-7

सप्तम् अध्याय

रंगमंचों के स्वरूप

क. मराठी रंगमंच ।

ख. बंगाली रंगमंच ।

ग. गुजराती रंगमंच ।

घ. हिन्दी रंगमंच का बदलता स्वरूप ।

ङ. इलेक्ट्रानिक मीड़िया एवं रंगमंच की भावी सम्भावनाएँ ।

रंगमंचों के स्वरूप

मराठी रंगमंच :

महाराष्ट्र में मराठी नाटकों की रंगभूमि पर प्रयोगों के आधार पर नाटक को मंचित करने का श्रेय श्री विष्णुदास भावे को जाता है। जिन्होंने इसे सन् 1843 ई. में प्रारंभ किया। इससे पूर्व मराठी रंगभूमि की हालत अच्छी नहीं थी। मराठी रंगभूमि से प्रेम करने वाले कलाकारों ने ही इस रंगभूमि को 100 वर्षों बाद भी जीवित रखा है। यानि 1943 से आज तक मराठी रंगमंच पर नाटकों के नये-नये प्रयोगों का सिलसिला आज भी जारी है। रंगभूमि पर हुये नाटकों की जानकारी व नये प्रयोग 'मौज' नामक पत्रिका के दिवाली अंक में छापी जाती रही हैं।

डा. मु. श्री कनडे ने अपने ग्रंथ 'प्रयोगक्षेम नाटके' में 500 से अधिक मराठी नाटकों का वर्णन किया है। सन् 1943 के बाद नाट्य क्षेत्र में जो मराठी रंगमंच रहा उसमें ऐसा माना जाता रहा है कि अपनी गरज के अनुसार 'केवल स्त्रियों के लिये' या केवल पुरूषों के लिये, स्कूली छात्रों के लिये या फिर अलग-अलग या सम्मिश्रित नाटक, नाटुकली संवाद बगैर लिख लिये जाते और उन्हें प्रयोग में लाया जाता।

मराठी रंगमंच पर नाटकों की प्रस्तुति को महत्व दिया जाता रहा है। हर नाटक के पीछे कुछ न कुछ उद्देश्य साफ नजर आता था। चाहे वह साहित्यिक नाटक हो, ऐतिहासिक नाटक हो या फिर चाहे पौराणिक ही क्यों न हो, हर नाटक में एख साफ उद्देश्य निकलकर बाहर आता है। प्रदर्शन के दौरान रंगमंच पर विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है जैसे पौराणिक नाटकों में हरदासी पद्धति के वेष में सर्वप्रथम सूत्रधार हाथ में झांजा लेकर रंगमंच पर आता है उसके पीछे पखावज वाला आता है। सूत्रधार रंगमंच पर आकर नाटक के आरंभ में मंगलाचरण के पद बोलता है। उसके बाद विदूषक मंच पर आता है। उसके मंच पर आते ही हँसी मजाक का सिलसिला प्रारंभ हो जाता है और हँसाते-हँसाते ही वह पौराणिक कथा को नाटक के अंश रूप में प्रस्तुत करता है। इसके बाद गणेशजी का आवाहन रंगमंच पर होता है। एक पात्र पाइर्व से निकलकर सूंड लगाया हुआ गजानन महाराज के वस्त्राभूषणों

से सुसज्जित होकर रंगमंच पर आता है। नाटक निर्विघ्न रूप से चले इसलिये सूत्रधार गजानन महाराज की पद्यात्मक पूजा करता है उसके तुरंत बाद सरस्वती का आवाहन तथा 'ब्रहस्पतिवत् मम वरें लव पात्रें वदतील ती।' ऐसा वरदान प्राप्त करते हैं। इसके बाद नाटक प्रारंभ होता है।

कानडी नाटक नृत्य प्रधान होते हैं। कथकली के समान उनके अभिनय में नृत्यात्मक अनुभूति होती है। भावनृत्य भी होते है तथा मुद्रा नृत्य भी होते हैं।

पौराणिक नाटकों को धीरे-धीरे लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। विष्णुदास जी का पहला दौर मुंबई में 1853 को दूसरा दौर 1854 को हुआ। 1855 के मार्च-अप्रेल को 'मुंबईकर हिन्दू नाटक मण्डली' की स्थापना महाराष्ट्र में हुई। इसके अगले वर्ष ही सन 1856 को मुंबई में अमरचन्दवाडीकर नाटककार ने नाटक प्रारंभ किये। उन्होंने ही पौराणिक नाटकों को जोड़कर (दो नाटकों को जोड़कर एक नाटक बनाया) 'लोकोपयोगी हसण्याजोगा' नामक नाटक बनाया तथा इसी श्रेणी में कई नये नाटकों का प्रयोग प्रारंभ किया।

ई. सन् 1857 से आगे 15 वर्षों तक संस्कृत के बहुत सारे प्रसिद्ध नाटक भी मराठी में अनुवादित होकर रंगमंच पर आये। इसमें सबसे बड़ा हाथ परशुरामपंत गोड़बोले का है। वेणी संहार-1857, उत्तररामचरित 1859, शाकुंतल 1861, मृच्छकटिक-1862, नागानंद-1865, पार्वती परिणय-1872, आदि का रुपान्तरण मराठी में श्री गोड़बोले ने किया।

श्री कृष्ण शास्त्री राजवाडे ने विक्रमोर्वशियम-1861 में, मालती माधव 1861, मुद्राराक्षस-1867, शाकुन्तल-1869, तथा श्री गणेशशास्त्री लेले ने जानकी परिणय 1865, मालविकाग्निमित्र-1867, विद्वशालभंजिका-1869, कर्पूरमंजरी-1877 में अनुवादित किया। इन भाषा रुपान्तरणों का अनेक रीति से प्रभाव मराठी रंगभूमि पर पड़ा और इसमें कितने ही नाटक उस समय की नाटक मण्डलियों ने रंगमंच पर प्रदर्शित किये

थे, व आज भी इन रुपान्तरित नाटकों का मंचन महाराष्ट्र के राज्यों में हर जगह-जगह प्रदर्शित किये जाते हैं। इन नाटकों से मराठी पृष्ठभूमि पर भी संस्कृत नाट्य पद्धतिका एक प्रकार का वातावरण निर्माण हुआ है।

शेक्सपियर के नाटकों का रुपान्तरण भी मराठी में किया गया है। Hamlet, Romeo & Juliet का ना. बा. कानिटकर ने मराठी रुपान्तरण किया।

मराठी रंगभूमि का पहला प्रोड्यूसर जनुभाई निमकर को माना गया है।

आज पूरे महाराष्ट्र में अनेक राज्यों में रंगसंस्थायें हैं। यहाँ पर विभिन्न संस्थायें अपने कलाकारों को नियमित प्रशिक्षित करते हैं तथा नाटकों का मंचन एक व्यावसायिक तौर पर करते हैं।

पुणे विश्वविद्यालय के डायरेक्टर श्री सतीष आलेकर ने अपने विभाग के अन्तर्गत 1987 से अपने कार्यभार अकेले ही सम्भालते हुए 1996 तक, बिना रुके इसे सुचारु रूप से चलाया। अब तक इन्होंने कई नाट्यों का निर्देशन व लेखन भी किया। धीरे-धीरे इस विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई। 1996 के बाद भी इस नाट्य विभाग की सारी जिम्मेदारियों को स्वयं वहन करने वाले सतीश आलेकर आज भी नये-नये प्रयोगों में लगे हुए हैं। विभाग के अध्यापक श्री प्रवीण ढोले के निर्देशन में पुणे विद्यापीठ के नामदेव सभाग्रह में व कई अन्य स्थानों पर नाट्य प्रदर्शन प्रादेशिक भाषा में किये गये। मराठी नाटक, तमाशा, नौटंकी लोकनाट्य जैसे नागमंडल, सीता स्वयंवर, बिन बिन्या चे झाड़ आदि की प्रस्तुतियाँ की गईं।

ललित कला केन्द्र पुणे विद्यापीठ द्वारा हाल ही में एख और नया प्रयोग किया गया। इस प्रकार के नाट्य प्रयोग वहाँ समय-समय पर विद्यार्थी करते रहते हैं। नाट्यशास्त्र के आधार पर अभिनय के चार प्रकार माने गये हैं - आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य। आंगिक, सात्विक एवं आहार्य इन तीनों के माध्यम से ही

शूद्रक द्वारा लिखे हुये नाट्य 'मृच्छकटिकम्' का प्रदर्शन पुणे विद्यापीठ के नामदेव सभागृह में किया गया।

वसन्तसेना और चारुदत्त का अभिनय दर्शकों को आकर्षित करने वाला था। जयन्त जाठे एवं भक्ति पाठक, चिन्मय केलकर, मुक्ता बर्वे, सन्दीप, दीपक भागवत आदि कलाकारों ने अभिनय और अपनी नृत्य मुद्राओं एवं नाट्य भावों से दर्शक वर्ग का मन जीत लिया। उज्जैन के कालिदास समारोह में इसी प्रकार से नृत्यमुद्राओं एवं अभिनय संवाद के माध्यम से स्वप्नवासवदत्ता, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्र आदि संस्कृत नाटकों की प्रस्तुतियाँ विभिन्न भाषाओं में की गयी है। इस समारोह में देश के विभिन्न भागों से आयी हुई भिन्न-भिन्न भाषाओं की नाट्य संस्थायें, नृत्यनाटिकायें एवं कालिदास रचित नाटकों का मंचन करती हैं। व्यावसायिक तौर पर तो यह नाटक सफल नहीं होते, किन्तु यह कहना उपयुक्त ही होगा कि ऐसे नाटकों को देखनेवाला दर्शक वर्ग साधारण न होकर एक ऊँची दृष्टि रखने वाला होता है। वास्तव में ऐसे नाटकों की ध्वनि, रूपसज्जा और वस्त्र आभूषण भी उसी समय को चिन्हित करनेवाले होते हैं और यह सम्मिश्रण ही श्रोताओं को मोहित करनेवाला होता है।

इन नाटकों के प्रति भी दर्शकों की रुचि बढ़ रही है। कारण यह भी है कि ये नाटक हिन्दी व संस्कृत में न होकर वहाँ की प्रान्तीय भाषा में होते हैं।

मराठी में अनुवादित 'मृच्छकटिकम्' में निर्देशक प्रवीण ढोले ने अपने अनुभव को एक सुन्दर रुप में प्रस्तुत किया है।

कोरियोग्राफी परिमल फड़के द्वारा की गई है, जिसको सभी ने सराहा। ध्वनि प्रारुपण दत्त प्रसाद रानाड़े का रहा जिसमें मेघना सहस्त्रबुद्धे रश्मि पटवर्धन, सन्तोश, रुपेश और दत्त प्रसाद ने अपने मधुर स्वरों से संगीत को नाटक में एक प्रमुख मोड़ दिया है।

संगीत का प्रभाव नाटक पर पड़ा। इसका कारण यह रहा कि नाटक में संगीत देनेवाली मण्डली को रंगमंच के पीछे वाली जगह पर बैठाया गया। निर्देशक की कार्यकुशलता का ही परिणाम है कि उसने मनोवांच्छित संगीत टेप कर प्रस्तुत नहीं किया बल्कि संगीत की मण्डली प्रत्यक्ष प्रस्तुत रही, अतः संगीत का वातावरण विविध रसों की व्यंजना सफलतापूर्वक रही।

परदे की जगह प्रकाश का प्रयोग किया गया। दृश्य परिवर्तन के समय प्रकाश की जगह एकदम पूरी लाईट्स को बन्द कर दिया गया है। रंगमंच पर अन्धकार हो जाता है तथा पिछला दृश्य जो मंचित हो चुका था उसकी मंच सज्जा हटाकर दूसरे दृश्य की मंच सज्जा को कुछ ही सेकण्ड में रख दिया जाता है।

इसके बाद मंच पर पुनः प्रकाश पड़ता है और उस दृश्य के पात्र रंगमंच पर आकर नाटक को आगे बढ़ाते हैं। व्यावसायिक दृष्टिकोण से मराठी रंगमंच आज सर्वप्रथम श्रेणी में आता है। इस प्रकार के नाटकों को प्रदर्शित करने के लिये पूरे महाराष्ट्र में अलग-अलग अनेक संस्थाएँ हैं, जो व्यावसायिक तौर पर सक्रिय रूप से कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं के नाटक अधिकतर हास्यप्रधान होते हैं ताकि दर्शक थियेटर में आने के बाद रंगमंच के नाटकों का पूरा मनोरंजन प्राप्त कर सके। आज चल रहे मराठी नाटकों में जिनकी प्रसिद्धि मल रही है उनके कथानक व निर्देशक इस प्रकार हैं -

1. **राशिचक्र** : पारिवारिक, स्वस्थ मनोरंजन और खासकर नवयुवकों की अपनी कहानी कहने वाला यह नाटक सादर प्रस्तुत किया जाता रहा है श्री शरद उपाध्ये द्वारा। इसकी निर्मिति की है रंगबहार ने।

   'राशिचक्र' नाटक में राशि के प्रकारों के प्रभाव को दर्शाया गया है, जिसमें किसी एक राशि वाले का स्वभाव कैसा है, और वह दूसरे राशि वाले के साथ किस तरह पेश आता है, बताया गया है। इस नाटक को देखकर दर्शक

सम्पूर्ण समय तक हँसता ही रहता है।

राशियों से संबंधित कई प्रश्नों के उत्तर हमें इस नाटक को देखने से मिल जाते हैं। जैसे - मेष राशि की लड़की का पति कर्क राशि वाला हो तो?
वृषभ राशि की लड़की का पति कन्या राशि वाला हो तो?
दोनों ही सिंह राशि के होंगे तो?
या फिर -
मिथुन राशि की लड़कियाँ टेलिफोन पर बोलते समय भी हाथ ऊपर क्यों रखती हैं?
कन्या राशि की लड़की को हनीमून पर जाते समय भी किसी प्रकार का टेन्शन क्यों रहता है?
कुंभ राशि के प्रोफेसर अपने विद्यार्थियों के सामने ज्यादा लोकप्रिय क्यों होते हैं?
कन्या राशि के लोगों की शंकाएँ किस प्रकार रहती हैं? एक उदाहरण में - "जज साहब बोलते हैं कि तुम्हें बंटवारा तो मिल जायेगा पर तुम्हें तीन लड़के हैं, उनका बंटवारा कैसे करोगे? मेरी सलाह यह है कि अगले साल चार लड़के ले आना। कन्या राशि वाली उसकी पत्नी तुरन्त बोल पड़ी - पर जज साहब, अगर अगले वर्ष हमें जुड़वा लड़के हुए तो?
अतः अपने जोड़ीदार को किस प्रकार की राशि वाला होना चाहिये, ये जानने के लिये दर्शकों में उत्सुकता रहती है और एक बड़ा वर्ग इस नाटक की प्रतिक्षा में रहता है कि इसका प्रयोग फिर कब होगा। नवयुवकों व युवतियों की भीड़ जब इस नाटक को देखती हैं, तो हंस-हंसकर लोटपोट हो जाती है। यही कारण है कि दर्शक मराठी नाटकों को ज्यादा पसंद करता है। निर्देशक ने अपनी (दर्शकों की मांग को) पकड़ को मजबूत बना लिया है।

2. **स्वभावाला औषध नाहीं** : यह नाटक वेधवंती द्वारा प्रकाशित व इसका लेखन नितिन चव्हाण व निर्देशन संतोश पवार ने किया है।

यह नाटक भी एक ही विषय को लेकर लिखा गया है।

जैसा कि नाम से ही पता लग जाता है, यह नाटक भी प्रमुख रूप से दो प्रश्नों के इर्द-गिर्द ही घूमता है जैसे -

1. लड़की की शादी पक्की कर रहे हो? थोड़ा रुको।

2. लड़के की शादी पक्की कर रहे हो? थोड़ा रुको।

मनुष्य के बाहरी सौन्दर्य की अपेक्षा अन्दर के सौन्दर्य का महत्व है। अन्दर का सौन्दर्य यानि मनुष्य का स्वभाव। यह उसे कैसे पहचाना जाय ?

जिस प्रकार राशि के बारह प्रकार होते हैं, उसी प्रकार स्वभाव के तीन प्रकार होते हैं। रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण। तुम्हारे ऊपर किस गुण का वर्चस्व अधिक है यह नाटक देखकर ही पता चलता है। यानि इस नाटक के कथानक का तानाबाना ही इस प्रकार रचा गया है कि दर्शक पूर्ण समय तक हँसता रहता है। एक उदाहरण देखिये -

लड़के की शादी तय करने के लिये योग्य लड़की को देखने गया दम्पत्ति उस लड़की में क्या खोट निकालता है - हमने लड़की का रूप देखा, शिक्षण देखा पर स्वभाव देखने का रह गया।

इस नाटक के कई प्रयोग मराठी रंगमंच पर किये जा चुके हैं। प्रमुख भूमिका में रहे हैं रजनी भट्ट, लेखक मनोज टिडेकर व निर्देशक भरत भोइटे हैं।

पत्नी से परेशान पति, अपनी पत्नी के सामने अच्छा बनने का प्रयास करता है और प्रार्थना कर रहा है -

"पत्नी खूब सता रही है। हे ईश्वर, सिर्फ एक घंटे के लिये मुझे मेरी पत्नी का पति होने का भाग्य दो।"

प्रमुख कलाकार कंचन घोड़के, आशा तारे, सुनिल तारे आदि हैं। इसके भी रंगमंच पर अनेक प्रयोग हो चुके हैं और अब भी सफलता के साथ इसके शो चल रहे हैं।

4. **गेला माधव कुणीकड़े** : एक हजार से भी अधिक प्रयोग करने वाला यह नाटक कला वैभव द्वारा प्रकाशित है। इसके लेखक श्र(ी वसंत सबनीस व निर्देशक, संगीत, नेपथ्य का कार्यभार श्री राजीव शिंदे ने ही सम्भाला है इसमें प्रमुख भूमिका के रूप में विनय येड़ेकर, माधवी गोगटे और प्रशांत दामले हैं।

5. **मी सुन्दर होणार** : प्रख्यात संस्था सुयोग द्वारा प्रकाशित एवं निर्मित पु. ल. देशपांडे द्वारा लिखित और प्रख्यात संगीतकार अशोक पत्की द्वारा इसके प्रस्तुतिकरण में सहायक होने के बाद तो यह नाटक असफल हो ही नहीं सकता।

नाटकों के रसिकगणों के लिये खास इसकी प्रस्तुति मराठी रंगमंच पर होती है। निर्देशक विजय केकरे तथा प्रमुख कलाकार कविता लाड़, वंदना गुप्ते, रवि पटवर्धन, प्रशांत दामले और डॉ. श्रीराम लागू हैं।

6. **एका लग्नाची गोष्ट** : सुयोग संस्था द्वारा ही प्रकाशित हास्य नाटक है। लेखक हैं श्रीरंग गोड़बोले व निर्देशक हैं मंगेश कदम। इसमें प्रमुख कलाकार कविता लाड़ व प्रशांत दामले हैं।

7. **जाऊ बाई जोरात** : अष्ट विनायक संस्था द्वारा निर्मित नाटक है। इसके लेखक, दिग्दर्शक, नेपथ्य, संगीत, प्रकाश सभी का कार्यभार अकेले पुरुषोत्तम बेर्डे ही सम्भालते आये हैं।

8. **बटाट्याची चाल** : चन्द्रलेखा द्वारा प्रकाशित एवं पु. ल. देशपांडे द्वारा लिखित मराठी के इस नाटक का निर्देशन श्री चन्द्रकान्त कुलकुर्णी द्वारा हुआ है।

9. **नुस्ती आफत** : मियाँ-बीबी के झगड़े पर लिखा गया वसंत तपस्वी का यह

नाटक हास्य प्रधान एवं पारिवारिक मनोरंजन प्रदान करता है।

"अगर तुम्हारी पत्नी तुम्हारे पीछे बेलन लेकर दौड़े तो यह आफत।"

श्री साईकला थियेटर्स द्वारा निर्मित इस नाटक का निर्देशन श्री अजय बेहरे द्वारा किया गया।

10. **बायको असून शेजारी :** एक पारिवारिक हास्य नाटक है - रंगगंध संस्था द्वारा खेला जाता है। इसके लेखक प्रताप गंगावणे निर्देशक संजीव बढ़ावकर तथा प्रमुख भूमिका लगातार करते आ रहे कलाकारों में - जयंत वाड़कर, किरण जोशी व प्रदीप पटवर्धन हैं।

11. **वस्त्राहरण :** भद्रकाली प्रोडक्शन द्वारा निर्मित किया गया है। इसके लेखक गंगाराम गावणकर हैं तथा निर्देशक कै. रमेश रणदिवे। प्रमुख भूमिका में संजीवनी जाधव और मचछिन्द्र काबली।

12. **श्री तशी सौ :** सुयोग संस्था द्वारा प्रकाशित नाटककार श्री सुधीर कबड़ी। निर्देशन - रविन्द्र दिवेकर। संगीत - अशोक पत्की व प्रमुख भूमिका वंदना गुप्ते व मोहन जोशी। यह हंसता-गाता एक कौटुम्बिक संगीत नाटक है।

13. **थोड़ तुझ न थोड़ माझ :** आशय कम्यूनिकेशन प्रा. लि. मुंबई के सानिध्य में ज्योति संस्था द्वारा इस नाटक का निर्माण किया गया। नाटककार हैं श्री उदयन ब्रह्मा तथा निर्देशक हैं राज कुबेर। एक संवाद देखिये - "सरकार चलाने के लिये एक होशियार व बाकी सब गधे लगते हैं और सभी होशियार एकत्र हो जाने पर उनकी अपनी सरकार होती है कारण... प्रमुख भूमिका में थे किशोर महाबोले व अरुणा भट्ट।

14. समृद्धि पानसे के द्वारा प्रस्तुत तथा शम्मी कपूर की डान्सिंग कॉमेड़ी को तथा लेखक शिवराज गोर्ले तथा संगीत विलास अड़कर का समन्वय 'कुर्यात सदा

टिंगलम्' में किया गया है। निर्देशक व नेपथ्य में भालचन्द्र पानसे हैं।

15. मराठी रंगमंच में विजय तेंदुलकर का एक विशेष स्थान है। उनके द्वारा लिखित नाटक आज भी थियेटर में अलग-अलग प्रयोग करते खेले जाते हैं। मराठी रंगभूमि में उनके नाटकों में उनका एक नया नाटक 'कन्यादान' भी रंगमंच पर खेला जा रहा है।

मराठी रंगमंच पर नये-नये नाटकों का आकर्षण दर्शकों पर तो रहता ही है भले ही नये धारावाहिक, नये चित्रपट क्यों न आ जायें। भारत के विविध प्रान्तों की रंगभूमि पर क्या-क्या हो रहा है इसकी उत्सुकता दर्शकों में रहती ही है। और इसी उत्सुकता को प्रोग्रेसिव डोमेस्टीक एसोसियेशन ने पुणे में एक बहुभाषी नाट्य महोत्सव के माध्यम से क्रियान्वित किया। पी.डी.ए. की ओर से अपनी 51वीं वर्षगांठ पर 21 से 29 अक्टूबर तक यह बहुभाषी नाट्य महोत्सव का आयोजन किया गया। इसमें कन्नड़, पंजाबी, गुजराती, मराठी, आसामी, मणिपुरी, मलयालम, बंगाली और हिन्दी भाषा के नाटकों को सादर प्रस्तुत किया गया था।

इन महोत्सव का उद्देश्य जनता के सामने विभिन्न भाषाओं के रंगमंच को प्रदर्शित करना था। ऐसे महोत्सव में अगर भाषा समझी नहीं गयी तो इस महोत्सव का क्या फायदा? लेकिन भाषा ही सबकुछ नहीं होती। भाषा के अलावा इस महोत्सव से हमें अपने प्रान्त के अलावा दूसरे प्रान्त के रंगमंच पर क्या हो रहा है! कौन-से नये प्रयोग हो रहे हैं! विषयों की जानकारी होती है। नाटक की तरफ देखने का उनका नजरिया क्या है? इन बातों की जानकारी तो हमें ऐसे नाट्य महोत्सवों से ही मिल सकती है। अतः कौन-सा रंगमंच कितना प्रगतिशील है या पिछड़ा हुआ है ये जानने के अलावा हर प्रांत की अपेक्षा उनके समृद्ध होने के लिये, क्या किया जा सकता है ऐसे महोत्सवों का आयोजन करना बहुत आवश्यक हो जाता है।

इस नाट्य महोत्सव का आरंभ गिरिश कर्नाड द्वारा लिखित 'अग्निमत्तमले'

नाटक से हुआ तथा समापन 'चाणक्य' नामक हिन्दी नाटक से हुआ। 'राऊ', 'आभासमाया' मराठी मालिका से सुप्रसिद्ध हुए मनोज जोशी ने इस नाटक का दिग्दर्शन किया। इसमें प्रमुख भूमिका भी उन्होंने की थी। लेखक मिहिर भुत्ता थे। चाणक्य की कथा तो अब सर्वपरिचित है। इस नाटक में उस काल के सन्दर्भ मिलने की वजह से यह कथानक मन को भा जाता है। और इसी तरीके से सभी कलाकारों के अभिनय भी इस नाटक की शोभा बढ़ाते हैं।

इस महोत्सव से एक बात तो समझ में आती है कि नाटक को समझने के लिये उस नाटक की भाषा को समझना इतना जरूरी नहीं है जितना कि लेखन, दिग्दर्शन, अभिनय संगीत, नेपथ्य, प्रकाश आदि को समझना जरूरी होता है।

इन महोत्सवों में विचार-विमर्श भी किया जाता है। इसके लिये एक संगोष्ठी का आयोजन किया जाता है। इस विचार विमर्श में जो नाटक जिस प्रांत का नेतृत्व करता है उस प्रांत की रंगमंच की स्थिति, कलाकारों का स्थान आदि की विशद् जानकारी हमें निर्देशक देता है। निर्देशकों और दर्शकों के बीच सवाल-जवाब होते हैं और जो नाटक रंगमंच (और आगे आने वाले समय में इसकी क्या स्थिति होगी) से जुड़े होते हैं।

ये सब नाटक व रंगमंच के लिये एक आशादायी बात है - किन्तु इन चर्चासत्रों में दर्शकों की उपस्थिति भी बढ़नी चाहिये यह अपेक्षा रहती है।

बंगला रंगमंच

सन् 1872 में कलकत्ते के साधारण मंच की स्थापना से बंगला नाटकों के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना घटी, जिसने नाटक लेखन को इतना प्रभावित किया कि जन रंगमंच स्थापना के बाद कई नाटकों को एक आन्दोलन के रूप में लिखा गया। दो वर्षों के अन्तराल में उस समय बंगला रंगमंच के लिये कई नाटक लिखे गये और इस क्षेत्र को नई दिशा दी साधारण रंगमंच ने। एक बंगला

आलोचक इस सम्बन्ध में कहते हैं कि- "बंगला नाटकों के मध्ययुग की स्थापना इसी गीताभिनय के आधार पर हुई है। इस युग के सभी प्रतिनिधि नाटककार गीताभिनय के आधार पर नाट्य रचना करके ही यशस्वी हुए हैं।"[1]

कलकत्ता और उसके आसपास वाली जगहों पर एक ऐसे जनसमूह का निर्माण होने लगा था जो हर नई कला को समर्थन देने के लिये प्रस्तुत हो जाता था और इसी कारण बंगाल को अपने रंगमंच के लिये उत्सुक दर्शक वर्ग मिल गया जो नई चेतना व नई कला को प्रश्रय देने के लिये तत्पर था। इन रंगमंचों के व्यवसायी होने से पूर्व ही व्यक्तिगत रंगमंचों पर बंगला रंगमंच को आगे बढ़ाने के लिये नाट्य लेखन प्रतियोगिता का आयोजन राष्ट्रीय स्तर पर किया जाने लगा था।

बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गीतांजली' से पूर्व केवल एक और पुस्तक ऐसी लिखी गई जिसने भारत ही नहीं अपितु इंग्लैण्ड और यूरोप के अन्य देशों में भी प्रसिद्धि प्राप्त की जिसका श्रेय 'नीलदर्पण' को जाता है। इस प्रकार 'नील दर्पण' भारतीय साहित्य का प्रथम नाटक है। जिसने लिखे जाने के पश्चात अल्प समय में ही अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की।

बंगला के प्रसिद्ध नाटककार मनमोहन बसु ने 10 दिसम्बर 1873 को नेशनल थियेटर कलकत्ता के वार्षिकोत्सव में भाषण करते हुए कहा था कि -
"जमींदारों द्वारा स्थापित शौकीन रंगमंच एवं नाट्यशालाओं से समाज की नाटक देखने की इच्छा सम्यक रूप से चरितार्थ नहीं हो पाती। इससे प्रदर्शक महाशयगण विपुल अर्थ व्यय के गर्त में जा पड़ते हैं और फिर जो चाहे वह जाकर देख सकता है यह भी नहीं। इसलिये इससे कुछ नाटकों के द्वारा पूर्व अभाव का सम्पूर्ण रूप में अपसारण नहीं हुआ और जिसे सभ्य समाज की सार्वजनिक सम्पत्ति होना चाहिये था, वह व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति के रूप में गिना गया। यह सर्वसाधारण की तृप्ति साधन में एक बड़ी बाधा थी।"[2]

बंगला के जात्रा और गंभीरा ये दो जननाट्य, धार्मिक नाट्य के रूप में 13वीं शताब्दी के उपरान्त स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। 19वीं शती तक आते-आते इन लोकनाटकों के तत्वों को आत्मसात करने के बाद यहाँ पर गीतनाट्य का जन्म हुआ। जिसने बंगला नाटक को जनता तक पहुँचने और इससे जुड़ी जनता की अपनी समस्याओं को रंगमंच तक पहुँचाने में सहायता मिली जिसेस यह मंच लोकप्रिय हो उठा। इससे दर्शकों को अपनी रुचि का परिष्कार हुआ, वहीं रंगमंच के लिये एक ऐसा दर्शक वर्ग तैयार हो गया जो रंगमंच की आवश्यकता को पूर्ण कर सकता था।

"डॉ. सुकुमार सेन ने जात्रा शब्द का अर्थ देवपूजा के निमित्त आयोजित मेला, जुलूस और नाट्यगीत बताया है।"[3]

बंगला रंगमंच में व नाट्यसाहित्य में श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर का सहयोग व योगदान सबसे बड़ा है। बंगला रंगमंच की अपनी एक शक्ल है। जात्रा जैसी शक्तिशाली रंगशैली और टैगोर जैसे लेखक बंगला रंगमंच की ही देन थे। बाद में राजनीतिक चेतना बंगला रंगमंच का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनी और रंगमंच केवल मनोरंजन का साधन न बनकर सामाजिक बदलाव का एक हथियार माना जाने लगा। उसी रूप में रंगकार्य भी सामने आया, परन्तु धीरे-धीरे आर्थिक दबावों के कारण बंगला रंगमंच की स्थिति भी पूरी तरह से व्यावसायिक हो चुकी थी। शंभुमित्र, उत्पल दत्ता, बादल सरकार जैसे दो-चार आधुनिक नाटककारों एवं रंगकर्मियों को छोड़कर शेष को धन के लालच ने दबा लिया है और वे सस्ती व्यावसायिकता का शिकार हो चुके हैं।

जात्रा शब्द के सम्बन्ध में डॉ. भट्टाचार्य का कथन है - "मध्ययुग में नवगीत, जात्रा उत्सव के उपलक्ष्य में अनुष्ठित होता था। अतएव साधारणतया उसे भी जात्रा कहकर ही पुकारा जाता था तथापि मध्ययुगीन बंगला साहित्य में किसी भी प्रकार से अभिनय अर्थ में जात्रा शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता। उत्सव अर्थ में ही जात्रा शब्द व्यवहृत होता था।"[4]

गुजराती रंगमंच :

गुजराती रंगमंच पारसी रंगमंच से मिलता-जुलता था। 1842 में शुरु हुई गुजराती रंगभूमि के पहले केवल एक ही नाट्य मंडली अस्तित्व में थी। बाद के कुछ वर्षों में गुजरात में कई मण्डलियों ने अपना अस्तित्व जमा लिया। इस बीच 'कृष्णाकुमारी' (1869), राम-जानकी दर्शन (1876), द्रौपदी दर्शन (1878) व सारशाकुंतल (1881) में गुजराती नाटक लिखे गये व रंगमंच पर खेले गये।

"मराठी की 'भावे नाटक कम्पनी' (1853) ने सौराष्ट्र-गुजरात की यात्रायें कीं। इनके नाटकों के संवादों की भाषा हिन्दी और गीत मराठी थे। इनके नाटकों से प्रेरणा पाकर लड़कों ने जुनागढ़ में अव्यावसायिक गुजराती नाटक मण्डलियाँ शुरु की थीं।"[5]

1. सन् 1890 से 1922 ई. तक गुजराती-नाट्य प्रवृत्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई थी। केवल बम्बई में ही लगभग 12 स्थायी व्यावसायिक मण्डलियाँ थीं जिन्होंने पर्याप्त सम्पत्ति और कीर्ति अर्जित की। अहमदाबाद के नाट्यकार डाह्याभाई धोलशाजी ने उत्तम कोटि के उपदेशात्मक नाटकों का प्रणयन कर गुजराती रंगमंच की बड़ी सेवा की। नाटकों द्वारा गुजराती रंगमंच पर शिष्टता, संस्कारिता और किंचित साहित्यिकता का सूत्रपात करने का श्रेय मूलशंकर हरिनन्द मूलाणी को प्राप्त होता है। रंगमंचीय नाटककारों में बेरिस्टर नृसिंह विभाकर का स्थान अनन्य है। इन्होंने अपने इंग्लैण्ड के प्रत्यक्ष रंगमंचीय अनुभव और स्वानुभूत पाश्चात्य संस्कारों के कारण गुजराती रंगमंच पर नवीन आदर्श और शैली का उदाहरण पेश किया। इन्होंने नाटकों को पुरानी लीक से हटाकर नये प्रगतिशील मार्ग पर चलाने का भगीरथ प्रयत्न किया।"[6]

1954 में कलारसिक चीमनलाल दोशी की प्रेरणा से एक नये रंगमंच की स्थापना हुई जिसमें उनके नाटक एव महत्वपूर्ण योगदान देते हैं - 'पत्तानी जोड़', 'झेर ना पारखा', 'राणी ने गमे ते राजा', 'असत्यनारायण' आदि उनके मुख्य नाटक थे।

1960 से 1970 के मध्य केवल दस सालों के अन्तराल के बीच बम्बई में ही 250 नाटकों के साढ़े सात हजार से भी अधिक प्रयोग किये गये।

यह प्रयास नाटक क्षेत्र को एक मुख्य दिशा देनेवाला था। इन्हीं के माध्यम से देश के पारम्परिक, लोकनाट्यों की तथा संस्कृत नाटकों की कल्पनाशील प्रस्तुति शैलियों की सम्भावनाओं का अन्वेषण किया गया। तब से आज तक यह प्रवृत्ति देश के लगभग सभी रंग सक्रिय क्षेत्रों और भाषाओं में कमोबेश तीव्रता से जुड़े प्रतिभाशाली निर्देशकों को अपने नाटक के प्रोडक्शन के लिये प्रोत्साहन स्वरूप पच्चीस हजार रुपये की आर्थिक मदद गुजरात संगीत नाटक अकादमी-गांधीनगर द्वारा दी जाती है।

केन्द्र सरकार की सहायता (नाट्य मण्डलियों एवं कलाकारों) भारत सरकार के मानव संसाधन विकास के खाते से नाट्यकला क्षेत्र में काम करने वाले इच्छुक कलाकारों और कार्यकर्ताओं को अनेक प्रकार की आर्थिक सहायता मिलती है। इसमें आदिवासी, लोककला संस्कृति के विकास, स्वैच्छिक सांस्कृतिक संस्थाओं के लिये बांधकाम व उपकरणों की खरीदी के लिये, कार्यक्रम के निर्माण के लिये, विशेष प्रकार के मंच प्रकल्पों के लिये, मंचन कलाओं के कलाकारों को फेलोशीप, स्वैच्छिक सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा संशोधन और प्रादेशिक संग्रहालयों के विकास आदि को भी ये राशि प्राप्त होती है। इसके लिये संस्था या कलाकार को एक अर्जी पत्र "Secretary Human Resource Development, Department of Culture Desk, N.N.M., Shastribhava, New Delhi-110001." लिखकर डालना होता है। या फिर वह गांधीनगर में इस पते पर भी अपनी अर्जी भेज सकता है।
डॉ. जीवराज महेता भवन, सांस्कृतिक विभाग के कमिश्नर, ब्लाक नं. 11, गांधीनगर.

गुजराती नाटकों एवं यहाँ के लोकनाट्यों में रंगमंचीय प्रसाधनों की कोई कमी नहीं रही। इन प्रसाधनों के उपयोग में अधिक से अधिक यथार्थता का एवम् स्वाभाविकता का ध्यान रखा जाता। गुजराती रंगमंच जीवन के अधिक निकट आ गया है और अनेक उत्तम कलाकारों का सहयोग एवम् अच्छी-अच्छी नाट्य मंडलियों का इसमें योगदान इस रंगमंच को एक उच्च शिखर की ओर ले जा रहा है।

क्या कारण रहा है कि - अहमदाबाद की 'जवनिका थियेटर्स' मण्डली आज भी अपने नये-नये प्रयोगों को देशभर में प्रदर्शित कर रही है? इस 'जवनिका थियेटर्स' का उद्घाटन 27 अगस्त् 1949 में टाउन हॉल में दादासाहेब भावलकर कें हाथों हुआ था। इसका प्रथम नाटक बर्नार्ड शॉ को लिखा नाटक 'डेविल्स डिसाईपल' का रुपान्तरण 'शयतान नो साथी' था। इसके लेखक कवि निरंजन थे। इस नाटक को प्रस्तुत करने की प्रेरणा आचार्य संतकुमार भट्ट साहब ने दी थी। नाट्य रुपान्तरण में भी इन्होंने सक्रिय रूप से सहायता की व नाटक के रिहर्सल के दौरान भी आचार्य ने अपनी सलाह कलाकारों एवं निर्देशकों को दी। 'नाटक के एक दृश्य में मुख्य पात्र रंगीला को फाँसी देते समय, उसके मात्र चेहरे के उपर तीक्ष्ण प्रकाश फैलाया जाय' यह सूचना एवं इस प्रकार से अपनी राय भट्ट साहब ने ही दी थी। शुरु में उस वक्त तो प्रकाश विधान में आज जैसे यंत्र उपलब्ध नहीं थे, इसलिये नगीनदास कायस्थ ने एक मोटा काला पतरा लिया, उसे एक चौरस में काट लिया तथा उसके बीज में एक छोटा छेद कर दिया और उसे अपनी स्पॉट लाइट के आगे रख दिया" - इस तरह, भट्ट साहब ने पैंसिल लाईट की कल्पना को साकार किया। यही कारण रहा है कि इस मण्डली ने हमेशा दर्शकों के लिये नाटकों में रंगमंच पर अलग-अलग प्रयोग किये।

अहमदाबाद के कई भागों में रंगभूमि पर खेला गया बर्नार्ड शॉ का यह पहला नाटक था। इस नाटक में हरकांत शाह और उनकी पत्नी कला शाह ने मुख्य भूमिका अदा की थी। पन्नालाल पटेल की नवलकथा 'मळेला जीव' का भी नाट्य रुपान्तरण कर इस संस्था ने प्रदर्शन किया व इसके बाद तो जवनिका और निर्देशक तरीके हरकान्त शाह का सुवर्णकाल प्रारंभ हुआ। लगभग कई वर्षों तक अलग-अलग संस्थाओं द्वारा विविध समय तक इस नाटक को खेला गया। इसके 150 से अधिक प्रयोग तो केवल गुजरात में ही हुए। इनमें मुख्य पात्र बदलते रहते थे।

बाद में आंतरिक कलह के कारण हरकान्त शाह ने इस संस्था को छोड़ दिया तथा संस्था के अंतिम दिनों में इन्होंने फिर वापसी की। तथा संस्था को बंद होने से

रोका। नवम्बर 1959 में 'मळेला जीव' भारी धुमधाम से कस्तुरीभाई एस्टेट के पीछे एक आंगन में विशाल मंडप और रंगमंच बनाया गया था। इस मंच पर इसकी एक भव्य प्रस्तुति की गई। स्टेज के पीछे के भाग में नीम का एक घटादार पेड़ था। उसी को दृश्य में रखकर इस रंगमंच को खड़ा किया गया था। इसका विज्ञापन 'सौ प्रथम की थ्री डायमेन्शनल रंगमंच' की तरह किया गया। काम जी की भूमिका में इस बार गुजरात समाचार के चीफ रिपोर्टर के.पी. शाह को खड़ा किया गया तथा जीवनी की भूमिका कोकीला शाह ने निभाई। यह नाटक पूर्णतया सफल रहा।

1 मार्च 1957 को वेडन हॉल में गुणवंत राय आचार्य की लोकप्रिय नवलकथा 'रामकहाणी' का भी नाट्य रुपान्तर किया गया। मुंबई नाट्य स्पर्धा में हरकांत शाह को श्रेष्ठ अभिनेता व बेबी आलनेकर को श्रेष्ठ अभिनेत्री का इनाम दिया गया। इसका निर्देशन भी हरकांत शाह ने ही किया। इस ऐतिहासिक नाटक की भव्य शुरुआत एक महत्वपूर्ण घटना बनी रही।

जून 1958 में मुंबई में भारती विद्याभवन में 'रूपमती' खेला गया। गुजराती नाटकों में प्रि-रिकॉर्डेड गीत-संगीत का फ्लैश बेक में सर्वप्रथम सफल प्रयोग हरकांत शाह ने ही 'मळेला जीव' के अन्त में पीछे से तथा 'रूपमती' नाटक ने आरम्भ से ही इसका प्रयोग किया। उस समय रिकॉर्डिंग के लिये कोई स्टुडियो नहीं था और न कोई अद्यतन यंत्र सामग्री। त्र्यंबक भाई पटेल ने उनकी सलाह पर ही टेप-रिकार्ड के उपर रातों रात जागकर गीतों को रिकार्ड किया।

इसके बाद तो नाटकों की एक लम्बी परम्परा चल पड़ी। और नये-नये प्रयोग गुजराती रंगमंच पर किये जाने लगे। नाटकों की एक सुदीर्घ परम्परा में - 'माटी नुं घर, श्यामली, पंखी नो माळो, उघाड़ी बारी, सपना उघाड़ी आँख ना, प्रणय-लीला, परछो प्रेम मां पटो, बैरा ते बैरा, साँप उतारा, केसर चन्दन, पातड़ ना पाणी, प्रीतम मारे पलटी' आदि नाटकों का प्रयोग इस संस्था ने कई बार किया।

हिन्दी रंगमंच का बदलता स्वरूप :

इक्कीसवीं सदी के सामने आते ही लगा था कि पहले वर्ष में नाटक रंगभूमि के क्षेत्र में कसकदार गुणात्मक नाटकों की संख्या में बढ़ोतरी होगी। नवें शतक के स्वागत के समय जैसा उत्साह मन में था वही उत्साह आज नाटकों के संदर्भ में भी निर्माण होगा। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। पिछले दो-तीन वर्षों से नाटकों का लेखन और कम हो गया, बस प्रयोगों पर ही ध्यान दिया जाने लगा। हिन्दी नाटकों की श्रेणी में इसकी संख्या तो कुछ ही है, साहित्य सृजन के लिये उतना ही दुखदायक जितना नाट्य सृजन के लिये डॉ. अज्ञेय का मत है -

"भारतीय रंगमंच व्यावसायिक क्षेत्र में शौकिया या अव्यावसायिक क्षेत्र की वय, संधि से गुजर कर तरुपाई में, संस्कारों और परम्पराओं को छोड़कर, कुत्सा और तारुण्य की रंगीनियों में प्रविष्ट हुआ और खो गया। उज्जवल भविष्य सामने है। तरुणाई की कर्मठता और लगन तो है, परन्तु प्रयोक्ता और निर्देशक दिग्भ्रमित हैं, क्योंकि वे बिना महक के विदेशी फूलों से गुलदस्ता सजाने में लीन हैं और अपनी जमीन को पहचानने की उन्हें फुर्सत नहीं।"[7] वर्तमान में चल रहे रंगमंच के इस दौर में उनका यह सिद्ध भी होता है। हिन्दी रंगमंच के लिये आज भी नये नाट्यकारों की गरज है। एक नयी दृष्टि की, जिससे नाटककार, नाटक और रंगमंच में एक नया आयाम दे सके।

नवोदित कलाकार तथा नवोदित नाटककार ही आज की परिस्थितियों का, आज के पश्चिमी परिवेश का और नयी-नयी तकनीकों का प्रयोग कर अच्छे नाटकों का सृजन कर सकता है। 'प्रत्येक रचना में रचनाकार' अपने समय का बोध किसी न किसी रूप में ध्वनित कराता है। यदि उसकी रचना वर्तमान को विस्मृत करके सिर्फ अतीत में ही भटक जाती है या फिर केवल भविष्य में चली जाती है तो न वह सफल हो सकती है न सार्थक। लेकिन इसके साथ यह भी है कि समसामयिक बोध के प्रकट करने पर भी उत्तम रचना समय को अतिक्रमित कर देती है। इस अर्थ में आज के नाटक की संवेदना आज की है, आधुनिक है साथ ही सार्वकालिक भी।

किसी भी प्रदेश या देश के रिश्ते से मुक्त, किसी जाति-विशेष के नाते से

मुक्त और किसी व्यक्ति विशेष से उपनाम से मुक्त आज का मनुष्य आज के नाटक में अपनी महत्ता, औड़ लघुता के साथ प्रस्थापित है।

आज के युग में विभिन्न प्रकार के रंगमंच हैं। सर्व विभिन्न प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हैं, जैसे - रिवाल्विंग स्टेज का आधुनिक उपकरण मिल सकता है। जिससे आधुनिक उपकरण मिल सकता है, जिससे बहु-दृश्यानुबन्ध का सफलता से प्रदर्शन किया जा सकता है, विभिन्न दृश्यों के कटआउट को सिरकाने-खिसकाने के प्रयोग की विधि है, बड़े-बड़े राजमहलों के दृश्यबन्ध उपलब्ध हैं जो रंगमंच में प्रयुक्त हो रहे हैं।

आज नाटक के लिये प्रेक्षक का एकात्म होना भी एक अनिवार्य शर्त मानी जाती है। रंगमंच 'अब दिल्ली, बंबई, कलकत्ता जैसे महानगरों की ऊँची दीवारों को फाँदकर छोटे शहरों और कस्बों में चला आया है और धीरे-धीरे वह अपना अस्तित्व बनाता जा रहा है। नाट्य लेखन में अब अधिक नये नाम जुड़ते जा रहे हैं। "एक समय आ सकता है जब उधार के रंगकर्मियों, नाटककारों और प्रेक्षकों से ऊबकर हिन्दी रंगमंच अपनी मर्यादा स्वयं वहन करेगा। रंगमंच के विकास के विषय से सम्बन्धित ही डॉ. सुरेश अवस्थी जी लिखते हैं कि - "दो स्तरों पर कार्य आवश्यक है। एक तो परम्परा के प्रति जागरुक आस्था और उसका अन्वेषण और दूसरे, आधुनिकता का अधिक सच्चा और प्रखर बोध।"[8]

दिल्ली के 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' की ओर आज सारे भारत की नाट्यदृष्टि लगी रहती है। यह संस्था ही आज पूरे भारत में हिन्दी आदि देश की नाटकों व रंगमंच पर नये-नये प्रयोग कर रही है। देश की प्रमुख नाट्य संस्थाओं के साथ इसके अच्छे सम्बन्ध बन रहे हैं व विश्व की प्रायः सभी नाट्य संस्थाएँ भी इससे संपर्क रखने की इच्छुक हैं। अपने नवीन प्रयोगों से इस संस्था को राजकीय तथा अन्याय नाट्य संस्थाओं का मार्ग प्रदर्शन करने का सुअवसर मिला है। अतः यह संस्था देश की नाट्य प्रगति एवं अवनति के लिए निश्चय ही उत्तरदायी है।

"सन् 2001 के अन्त में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की रंगमंडली कोलकाता के बाद पूर्वोत्तर के दौरे पर रही। कोलकाता में पाँच दिन तक अपनी चार प्रस्तुतियों के बाद इसने गुवाहाटी में 'अनामदास का पोया', 'ताजमहल का टेंडर', 'राजा की रसोई', 'दीवार में एक खिड़की'.... घासीराम कोतवाल और लड़की का 24 से 31 दिसम्बर के बीच मंचन किया। 3 से 6 जनवरी 2002 तक जोरहाट में और तीन नाटक 11 से 13 जनवरी २००२ के बीच सिलीगुड़ी में खेले जायेंगे। दिल्ली में अस्मिता समूह वारेन हेस्टिंग्स का सांड 23 दिसम्बर को हैबिटाट सेन्टर में करेगा।[9]

मुंबई में विगत 20 वर्षों से अपनी नाट्य संस्था 'एकजुट' के माध्यम से नादिरा बब्बर सक्रिय हैं। वो निरलट नाटकों का मंचन भी करती रहती हैं, चाहे फिर उन्हें आर्थिक चुनौतियों का सामना ही क्यों न करना पड़े। वे अपने समकालीन नाट्यरंगमंचों से हटकर बेहतर तथा सरोकारों से युक्त नाटकों का मंचन कर आज किसी की मोहताज नहीं हैं। इस रंगमंच ने ही उनके आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय को काफी ताकतवर बना दिया है। समकालीन हिन्दी नाट्य की स्थिति के बारे में वे मानती हैं कि इसमें कुछ कमजोरियाँ हैं और उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिये। जैसे -

"हिन्दी के रंगमंच को बनाने का काम सरकार को करना चाहिये, राष्ट्रीय भाषा को बढ़ावा देने के लिये शहर में छोटे-छोटे प्रेक्षागृहों का निर्माण करना चाहिये। बरे भवन संस्कृति के नाम पर बनाये जाते हैं, लेकिन नाटक के लिए कोई प्रेक्षागृह नहीं बना सकती।"[10]

यहाँ रंगमंच की कमी है। रंगकर्मियों, नाटककारों व निर्देशकों की कमी है। जो लगातार नाटक करें। इनके बीच आपसी तालमेल नहीं होना चाहिये। लेखक को निर्देशक का सुझाव समझना चाहिये। और निर्देशक को भी लेखक के शब्दों का आदर करना चाहिये, दूसरी ओर रंगकर्मियों को निर्देशक की ही बात सुननी

चाहिये।आजादी भी देनी चाहिये, लेकिन रंगकर्मी की नियत को समझना चाहिये।"[11]

"आज भले ही व्यावसायिक नाटकों मे हिन्दी नाटक यथार्थ जीवन के रूपबरू कम ही हो पाता है। किन्तु ऐसे भी कई नाटक हैं, जिन्हें हम लोग यथार्थ जीवन सेजोड़ करने वाले नाटक कह सकते हैं। जैसे - 'दयाशंकर की डायरी', 'शकुबाई','संध्या छाया' आदि।

"नाटक की शैली में तो आमूल परिवर्तन दृष्टिगोचर होता रहता है। भारतेन्दु युग के प्राय: सभी नाटक, नृत्य, गीतमय होते थे। किन्तु आधुनिक नाटकों से नृत्यगीत, कविता तथा स्वगत भाषण सर्वथा बहिष्कृत कर दिये गये हैं। आज के नाटकों में रंगमंच के संकेत इतने विस्तृत होते हैं, जितने भारतीय नाटकों में कभी न थे।

आज हिन्दी में अच्छे नाटक नहीं हैं, अतः अब भी इसे बाहर से सहारा लेना पड़ता है। हिन्दी के नाटक लिखने वाले या तो आर्थिक स्थिति के कारण नहीं लिख रहे या फिर उन्हें फिल्मी चकाचौंध ने अपनी ओर आकर्षित किया हुआ है।
एक नाटक के प्रदर्शन में वह छोटा हो या बड़ा, 500000 से 1 लाख तक खर्च हो जाता है। अच्छा निर्देशक को अच्छी टीमवर्क और बड़ा नाटक हो तो डेढ़ से 2 लाख तक भी खर्चा हो सकता है।

इन व्यावसायिक नाटकों के मंचन में पूर्वाभ्यास के दौरान ही रंगकर्मी, नाटककार एवं निर्देशक अपनी-अपनी स्थिति को स्पष्ट कर लेते हैं और उनमें कोई भेदभाव नहीं रहता है। अच्छे निर्देशक पूर्वाभ्यास के लिये कम से कम छह सप्ताह निर्धारित करते हैं। उस पर भी यदि पूरी तरह तैयारी नहीं हो पाती है तो वह समय में वृद्धि कर सकता है।

निर्देशक पूर्वाभ्यास के समय इस प्रकार सप्ताह विभाजन करता है।

प्रथम सप्ताह : प्रस्तुति-लिपि वाचन, पूर्वाभ्यास :

- पूरी लिपि का अभिनेताओं द्वारा अपने-अपने अंशों का सम्पूर्ण वाचन। नाटक के अर्थ पर विचार, चर्चा तथा प्रस्तुति के संदर्भ में आने वाली कठिनाईयों पर आपस में विचार-विमर्श।
- प्रथम अंक का वाचन दो बार या तीन बार। उसकी व्याख्या तथा अंक में आये हुए चरित्रों की स्वभावगत विशेषताओं पर विचार विमर्श।
- द्वितीय अंक का दो बार या तीन बार अनुवाचन। चरित्र-चित्रण पर बारीकियों से विचार।
- सम्पूर्ण लिपि का वाचन और सम्पूर्ण व्याख्या, चरित्र आदि पर विचार।
- पुनः सम्पूर्ण लिपि का वाचन और याद करने के लिये अपनी-अपनी लिपि की सम्पूर्ण तैयारी।
- अभिनेताओं द्वारा संवादों को बार-बार बोलने का अभ्यास। भाषा और उच्चारण सम्बन्धी स्थिति पर विचार।"[12]

दूसरा सप्ताह - अभिनय और समूह की संरचना :

- प्रथम अंक के आधे भाग के लिये समूह संरचना गति अभिनय और आंगिक तथा वाचिक अभिनय के रूप की निर्मिती। अभिनय की रचना और पुनर्विचार एवं संशोधन।
- प्रथम अंक के शेष भाग का अभिनय एवं समूह संख्या का निर्माण, अभिनय और समूहन पर पुनर्विचार तथा संशोधन। प्रथम अंक के पहले भाग का अभिनय समूहन के साथ और उस पर पुनर्विचार।
- द्वितीय अंक के पूर्वार्द्धों की रचना। अभिनय आंगिक, वाचिक समूहन गति का निर्धारण और विचार।
- द्वितीय अंक के उत्तरार्द्ध की रचना - अभिनय समूहन आदि।
- प्रथम और द्वितीय अंकों का पूरा अभिनय एक धारा में बिना रुके सम्पूर्ण

समूहनों पर पुनर्विचार।

- तृतीय अंक उत्तरार्द्ध की रचना, अभिनय, समूहन आदि तथा विचार विमर्श।
- तृतीय अंक उत्तरार्द्ध संरचना, अभिनय, समूह आदि तथा तृतीय अंक पूर्वाद्ध का बिना रुके अभिनय एवं सम्पूर्ण तृतीय अंक की संरचना पर विचार-विमर्श।
- अंक तृतीय का पूर्वाभ्यास। कमजोर स्थलों को ठीकठाक करना, संगीत आदि के साथ।
- अंक प्रथम, द्वितीय, तृतीय का सम्पूर्ण पूर्वाभ्यास संगीत के साथ।"[12a]

तीसरा सप्ताह :

- प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय अंक का बिना रुके अभिनय। समूहन, गति, अभिनटन, तथा अभिनय पर पुनर्विचार और पुनः परीक्षण।
- भिन्न-भिन्न अभिनेताओं द्वारा अपने अंश और समूहन पर अभ्यास तथा अपने अभिनय आदि को चमकीला और प्रभावशाली बनाने की चेष्टा।
- प्रथम अंक के पूर्वाद्ध को प्रभावशाली बनाने का अभ्यास, भावानुरूप अभिनय की चेष्टा, संवादों को पूरी तरह याद करना तथा पुनः परीक्षण।
- प्रथम अंक के पूर्वार्द्ध का अभिनय तथा प्रथम अंक के उत्तरार्द्ध को प्रभावशाली बनाने का प्रयास। संवादों को पूरी तरह याद करना।
- सम्पूर्ण प्रथम अंक का निरीक्षण करना।
- प्रथम अंक एवं द्वितीय अंक का बिना रुके अभिनय।
- द्वितीय अंक के पूर्वाद्ध को अधिक प्रभावशाली एवं प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयास और बराबर समूहनों और अभिनय का दुहराव।
- द्वितीय अंक उत्तरार्द्ध को प्रभावपूर्ण तथा प्रभावशाली और चमकीला बनाना तथा प्रथम अंक का सम्पूर्ण अभिनय।"[12b]

चौथा सप्ताह :

- प्रथम अंक तथा द्वितीय अंक का बिना रुके अभिनय और प्रथम तथा द्वितीय अंक को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये किये गये प्रयासों का पुनः परीक्षण।
- तृतीय अंक के पूर्वाद्ध का अभिनय एवं समूहन को प्रभावपूर्ण एवं प्रभावशाली बनाने का प्रयास। संवादों को पूरी तरह कंठस्थ करना तथा परीक्षण।
- तृतीय अंक के उत्तरार्द्ध को माँजना और चमकाना। तृतीय अंक का पुनः परीक्षण।
- बिना रुके प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय अंक का अभिनय, समूहन के साथ सम्पूर्ण नाटक का पुनः परीक्षण और कमजोर स्थलों का सुधार।
- संगीत संरचना को जोड़कर पूर्वाभ्यास, अंक प्रथम का पूर्वार्द्ध परीक्षण तथा विचार-विमर्श।
- संगीत संरचना के साथ प्रथम अंक के उत्तरार्द्ध का पूर्वाभ्यास। परीक्षण एवं विचार विमर्श।
- संगीत संरचना के साथ द्वितीय अंक का पूर्वार्द्ध। प्रथम अंक का संगीत संरचना के साथ पूर्वाभ्यास।"[12c]

पाँचवा सप्ताह :

- संगीत संरचना, तृतीय अंक पूर्वाद्ध, पूर्वाभ्यास तथा प्रथम एवं द्वितीय अंक का संगीत आदि के साथ सम्पूर्ण पूर्वाभ्यास।
- संगीत संरचना तृतीय अंक का पूर्वाभ्यास। सम्पूर्ण संगीत संरचना का पुनः परीक्षण एवं विचार-विमर्श। संशोधन, परिवर्द्धन।
- अंक प्रथम एवं द्वितीय का पूर्वाभ्यास। कमजोर स्थानों को माँजना और चमकाना।
- अंक तृतीय का पूर्वाभ्यास। कमजोर स्थलों को ठीकठाक करना, संगीत आदि के साथ।
- अंक प्रथम, द्वितीय, तृतीय का सम्पूर्ण पूर्वाभ्यास संगीत के साथ।

- विचार विमर्श, अन्य बातों का। मंच-दृश्य आदि का सम्पूर्ण पूर्वाभ्यास।"[13]

छठा सप्ताह

- तकनीकी वस्तुओं के साथ सम्पूर्ण पूर्वाभ्यास, प्रकाश, वेशभूषा मंच की (प्रापर्टी) वस्तु के साथ।
- तकनीकी वस्तुओं के साथ पुनः सम्पूर्ण नाटक का पूर्वाभ्यास तथा तकनीकी प्रभाव का परीक्षण एवं संशोधन।
- तकनीकी वस्तुओं के साथ सम्पूर्ण पूर्वाभ्यास।
- सम्पूर्ण विधि विधान के साथ मंच पर पूर्वाभ्यास।
- अभिनय क्षेत्र (Acting Area) का निर्धारण एवं अन्य विचार विमर्श तथा सम्पूर्ण पूर्वाभ्यास।"

इस प्रकार नाटक के मंचन के पूर्व सफल निर्देशक एवं ज्ञानी कलाकार एक सम्पूर्ण नाटक की प्रस्तुति करता है।

प्रस्तुतियाँ :

नाटक जारी है....

नाटक जारी है युगमंच संस्था का एक प्रयोगधर्मी नाटक है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के तीन नाटकों भारत दुर्दशा, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति और अंधेर नगरी को लेकर इसकी रचना की गई है। इन नाटकों को लिखे एक शताब्दी से भी अधिक समय बीत चुका है। किन्तु इस बात में कोई सन्देह नहीं कि भारतेन्दु के ये पात्र और स्थितियाँ कमोबेश आज भी हमसे रूबरू हैं। बकरों का काटा जाना जारी है और सत्ता की मदिरा में डूबे शासकों द्वारा 'न्याय' किये जाने का स्वांग भी।

इस तरह तीनों नाटकों की 'समस्या' दरअसल एक ही है, वही जो भारतेन्दु का 'स्थाई दर्द' है। समाज और देश में पनपती भयंकर विकृतियाँ, जिनके मूल में हैं, प्रतिनिधित्वहीन स्वार्थी सत्ता। तीनों नाटकों को एक साथ लेने से तो बात और साफ

होकर उभरती है। भारत की दुर्दशा होने का एक ऐतिहासिक क्रम स्पष्ट होता है। विकृतियाँ (धर्म, मानसिक, अंधकार, फूट, मदिरा, आलस और बैर आदि) भारत दुर्दशा कर सीधे-सच्चे भारत को कुटिल दुर्देव बना देती है। सत्ताधीश दुर्देव राजा का दीवाने खास है वैदिकी हिंसा का रंगमहल और दिवाने आम है अंधेर नगरी का दरबार। वैदिकी हिंसा वाले हिस्से हमारे समय में सत्ता के बेशर्म खेल, उसकी धार्मिक आस्था (?) और धर्म के नाम पर रचे जा रहे नंगे नाच और वहशी उन्माद को भी सामने रखते हैं। पर अंतर्विरोध यह है कि जो खुद लाखों 'बकरें कटवा देते हैं, एक बकरी की सार्वजनिक मौत का विवाद उठने पर अपने कोतवाल को ही बलि का बकरा बना डालते हैं। सो शीर्ष की राजनीति में उलटफेर होते हैं। (आम जनता की भूमिका तो इस ऊँचे खेल में 'को नृप होय हमें ही हानि' जैसी ही रहती है, बाटे आदि प्रपंच के बावजूद)। पर कुर्सी पर बैठनेवाला बदल जाने से कहीं युग बदलता है?

इस प्रयोग को कुमाऊँ की लोककला से जुड़े होली ठेटर (स्वांग) में बांधा गया है। नाटक को आंचलिक रंग देने के लिये कथ्य को जागर, झोड़ा, नृत्य व न्योली की लोकधुनों में गूंथने का प्रयास किया है।"

यह नाटक रंगमंच की दृटि से पूर्णतः सफल रहा है। इसमें हर चीज को नये और समकालीन ढंग से पेश करने की कोशिश की है। युगमंच द्वारा प्रस्तुत इस नाटक में रंगमंच पर मुख्य भूमिका के रूप में

स्पिक मैके के रजत जयंती समारोह से पूर्वके नाट्य प्रस्तुतियों के तहत राजधानी में रतन थियम का चक्रव्यूह और नसीरुद्दीन शाह का 'इस्मत आपा के नाम' का मंचन एक रोमांचक अनुभव था, मणिपुरी भाषा में प्रस्तुत चक्रव्यूह स्थानीयता से गहरे जुड़े होने के बावजूद मंचीय कल्पना, संगीत, अभिनय, रुप सज्जा आदि की दृष्टि से शास्त्रीय और अद्भूत था। 'इस्मत आपा के नाम' में नसीर अपने मंचीय रंगों से दिखाते हैं कि वे नसीर क्यों हैं। हिन्दी क्षेत्र में नाट्य समारोहों का दौर रहा। इप्टा की हरदा (म.प्र.) इकाई के दूसरे राष्ट्रीय नाट्य समारोह (4-6 जनवरी) में मैं नर्क

से बोल रहा हूँ (विवेचना-जबलपुर) समेत तीन नाटक खेले गए। लखनऊ में भारतेन्दु नाट्य अकादमी के शिशिर उत्सव में गाजीपुर की हसीना, दुलारीबाई और मुक्ति आदि नाटकों में से अधिसंख्या का मंचन अकादमी के छात्रों और रंगमंडल ने किया। उदयपुर राजस्थान में तीन दिवसीय नाट्य संस्था (3-5 जन)पर लोककला मंडल में बूढ़ों बींद बींदणील्यायो, नट सम्राट आदि को दर्शकों ने सराहा।

"आधुनिक समय में विभिन्न भाषाओं में रंगमंच की स्थिति पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि पिछले दो दशकों में भारतीय रंगमंच अपनी अस्मिता के लिये अपनी अलग पहचान बनाने के लिये छटपटाता रहा है। उसकी तलाश एक ऐसे मुहावरे की रही है जो अपना हो। पश्चिमी रंगमंचीय स्वरूप से अलग और विशिष्ट हो मगर फिर भी आज के जमाने के लिये प्रासंगिक हो। इस दिशा में सबसे पहला अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयास बंगला नाटक लेखन में रविन्द्रनाथ ठाकुर ने खासकर अपने रक्तकरबी, मुक्तधारा, राजा जैसे नाटकों में किया था। कई लाखों से उनके जमाने में, या इसके बाद भी इस काम का अनुसरण नहीं किया जा सका। आजादी के बाद पांचवे-छठे दशक में नयी दृष्टि के लिये प्रेरणा व्यापक रूप से दिखायी पड़ी और कन्नड़, मराठी, गुजराती, मलयालम, मणिपुरी, हिन्दी आदि प्रादेशिक भाषाओं में जाहिर हुई। कई प्रतिभावान तरुण निर्देशक नाटककार अभिनेता व रंगशिल्पी अपने अपने विशेष क्षेत्र में किसी नये नाट्यरूप और नयी नाट्यभाषा, मुहावरे और शैली के लिये एक अच्छे नाटक की तलाश करने लगे।"

इलेक्ट्रानिक मीड़िया एवं रंगमंच की संभावनायें :

आज हिन्दी रंगमंच के सम्बन्ध में ऐसी अनेक गोष्ठियाँ देशभर में जगह-जगह सामूहिक व व्यक्तिगत रूप से होती रहती हैं। जिसमें इलेक्ट्रोनिक मीड़िया व फिल्मों के प्रभाव से रंगमंच व नाटक के उतार-चढ़ाव पर बहस का मुद्दा उठाया गया है। इन माध्यमों से अनेक नाट्य संस्थायें एकजुट होकर रंगमंच पर इससे पड़ने वाले प्रभाव को कम करने के लिये भी प्रयत्नरत है।

1. मीडिया मालिकों के माध्यम से ही टी.वी. कार्यक्रम, फिल्मों का निर्माण,

स्क्रिप्ट राइटींग, केमरा और एडिटिंग जैसे अभ्यासक्रम।

2. मीडिया मार्केटींग और कॉपी / स्क्रिप्ट रायटिंग का कोर्स।
3. अभिनय, दिग्दर्शन, नाट्यकला, रेडिओ टी.वी. के नाट्य अभिनय के लिये प्रशिक्षण।
4. टी.वी. रेडियो के लिये उद्घोषक तथा कार्यक्रम संचालन के लिये अन्य शिविरों का आयोजन।
5. बालकों के लिये अभिनय कार्य शिविर आदि हैं।

इलेक्ट्रानिक मीडिया का प्रभाव तो राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय भी हो सकते हैं। परन्तु रंगमंच की अपनी एक अलग पहचान है। टी.वी. रेडियो आदि माध्यमों को तो सिर्फ पत्रकारस्वरूप ही माना गया है।

फिल्म एवं टेलिविजन राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय होने के कारण दृश्य एवं श्रव्य होते हैं और दोनों दृष्टियों से ये उनकी जवाबदारी भी हो जाती है कि इन संचार माध्यमों द्वारा प्रेक्षकों को आनन्द प्रदान करें। रंगमंच के सम्बन्ध मं एक कारण यह भी हो सकता है कि रंगभूमि के बारे में हमारी इतनी गहरी सोच नहीं है। परन्तु फिर भी रंगमंच कलाकार एवं प्रेक्षकों का जीवन आदान-प्रदानशील है। इसलिये ही तो रंगमंच पर स्थानीय जीवन का चित्रण होता हो और यही उसकी ताकत है।

आजकल नाटकों के शो कान्ट्रेक्ट बेसिस पर प्रदर्शित किये जाते हैं पर इसका यह मतलब नहीं कि यह पद्धति आर्थिक व्यवस्था का प्रश्न नहीं है। भले ही नाटकों से जुड़ी आर्थिक समस्या का निदान मिल गया है। किन्तु नाट्य क्षेत्र की सामाजिक, सांस्कृतिक रीति पर इन शो नाटकों का प्रभाव ज्यादा असरदायक होते हैं। इन कान्ट्रेक्ट शो के मुद्दे भी प्रेक्षकों की पसंदगी और नापसंदगी पर निर्भर करते हैं।

'सबके साथ नाट्य देखने जाना अर्थात् उसका सामाजिक हिस्सा बनने के बराबर है। परन्तु उस पर व्यक्तिगत अनुभूति ही उत्तरदायी रहती है। मंच पर प्रदर्शित जीवनानुभव प्रेक्षक के अनुभव को विश्व में बढ़ावा दे सकता है।

कान्ट्रेक्ट शो, सोल्ड आउट शो, स्पान्सर्ड शो, महिला मण्डलों द्वारा, क्लबों द्वारा, युनिवर्सिटी आदि द्वारा प्रयोगों के कारण प्रेक्षकों की संख्या में कमी आयी है। लेकिन इस प्रकार से इन कार्यक्रमों को आयोजित करने वाले आंकड़े आज देशभर में बढ़ते ही जा रहे हैं। किन्तु दूसरी ओर देखा जाय तो इन निर्माताओं द्वारा नाट्य मण्डली की आय भी गिरावट के स्तर को पहूँच जाती है। इसमें सबसे अहम् बात यह मानी जायेगी कि नाटक की गुणवत्ता और प्रेक्षकों की पसंद में ऊँचाई हो, तो हर प्रकार के शो सफल हो सकते हैं। इसमें कोई दो मत नहीं है, औड़ वह बाक्स ऑफिस पर प्रभाव पड़े ऐसा नहीं है। इसका कारण यह बन जाता है कि दरों में वृद्धि हो जाती है और वह महंगी हो जाती है।

कान्ट्रेक्ट शो आदि आज देशभर में हो रहे हैं। मुंबई, दिल्ली, पुना, आदि शहरों में ये नाटक शो बहुत चलते हैं। सप्ताह में एक दो बार तो इन कॉन्ट्रेक्ट शो नाटकों का मंचन रंगमंच पर होता ही है। हिन्दी नाटकों में रंगमंच के विकास में इसे एक छोटा कदम मान सकते हैं। किन्तु सप्ताह में बाकी पाँचों दिन प्रादेशिक भाषा या अन्य भाषाओं के नाटकों को मंचित किया जाता है। एक बहुत बड़ा वर्ग जो रंगमंच की ओर आकर्षित है वह प्रादेशिक भाषा का ही है।

इन कॉन्ट्रेक्ट शो के माध्यम से ही नाट्य कंपनी को और उसमें काम करने वालों को लाभ ही लाभ मिलता है, अगर वह दर्शकों के पसन्द का नाटक हो तो। मुंबई में बीस पच्चीस थिएटर हैं उनमें बारह-पन्द्रह नाटकों के शो का समय निर्धारित कर लिया जाता है, व सुबह 9 बजे से रात 10 बजे तक नाटकों का मंचन चलता रहता है।

व्यावसायिक तौर पर नये नाटकों का दौर एक बार फिर चल पड़ा है। अगर हम नाटक के साथ-साथ अपनी जवाबदारियों को पहचान कर प्रत्येक नाट्य मण्डली, नाटक की आवश्यकताओं और उनमें सुधार के कारण को देखें तो निश्चित ही इस

दिशा में यह एक नया कदम होगा।

रविवार के दिन नाटकों के शो की सारी पूंजी से निर्माताओं का फायदा होना चाहिये। हमारे यहाँ मध्यम से लेकर निचले वर्ग के जितने भी लोग हैं आज इन टिकिटों को खरीदकर अपना मनोरंजन करने थियेटर तक पहुँचते ही हैं चाहे आज मिडिया का प्रभाव अधिक ही क्यों न हो गया हो। घर में लेटकर व डायनिंग टेबल पर बैठकर, खाना खाते हुए, टी.वी. चेनलों पर नाटक व धारावाहिकों को देखनेवाला दर्शक वर्ग भी आज रंगमंच की ओर आकर्षित हो रहा है। मीडिया के अन्तर्गत नये आयाम जुड़ने लगे हैं। जैसे फीचर फिल्मों के बाद टी.वी. का एक छोटे पर्दे के रूप में घर-घर पहुँचने का कारण रहा कि -

1. फीचर फिल्में भीड़ नहीं खींच रही थीं जबकि छोटे पर्दे पर दर्शक घर पर ही टेलीफिल्में देख रहा था।
2. अच्छे निर्माता फिल्मों में पैसा नहीं लगा रहे थे, पर चैनल टेलीफिल्म पर लट्टू थे।
3. फीचर फिल्म के मुकाबले टेलीफिल्म सिर्फ चार लाख रूपये में बन जाती थी।
4. टी.वी. में रचनात्मक की ज्यादा संभावना थी।

इन सब के आने के बावजूद भी दर्शक वर्ग घटनाओं को जीवंत रूप में रंगमंच पर प्रदर्शन के रूप में देखना चाहता है।

इस रंगमंच का अलग वर्ग बनता जा रहा है। टेलिविजन, विडियो पर दिखने वाली समृद्ध कृतियों और सिनेमा के टेक्निकलर का विकास भी इसके विकल्प नहीं हो सकते हैं।

समकालीन हिन्दी नाटक से जुड़े प्रश्नों पर नाट्य लेखक, निर्देशक तथा अभिनेत्री नादिरा बब्बर, गणेशचन्द्र राही से बातचीत के दौरान मानती हैं कि -

"टी.वी. लोगों के लिये शाम को मनोरंजन का विकल्प बना। जो शाम को रंगमंच की तरफ नाटक का आनन्द लेने मुड़ते थे वे घर में सिमटने लगे, फिर भी रंगमंच का अपना दर्शक है। रंगमंच और पर्दे में अंतर होता है। यह एक जीवित कला है। दर्शक जरुर लौटते हैं रंगमंच की ओर।"

यह आवश्यक है कि तकनीकी की दृष्टि से हम अभी उतने सक्षम नहीं है जितने पाश्चात्य देश सक्षम हैं। आधुनिक तकनीक के बारे में उनका मानना है कि -

"तकनीक की दृष्टि से किसी भी भाषा के नाटक अभी तक सक्षम नहीं हुए हैं। मंच पर बाढ़ आना, महल बनाना, आग लगाना आदि दृश्य जो तकनीक दृष्टि से काफी उन्नत कहे जायेंगे फिलहाल पाश्चात्य देशों में ही संवभव हो पाये हैं।"

संदर्भ सूचि

1.	डॉ. आशुतोष भट्टाचार्य, बंगला नाट्य साहित्येर इतिहास-प्रथम भाग	पृ. 300
2.	डॉ. महेश्वर - हिन्दी बंगला नाटक - भूमिका	पृ. 9
3.	डॉ. सुकुमार सेन - बंगला साहित्येर कथा	पृ. 143
4.	बंगला नाट्य साहित्येर इतिहास	पृ. 69
5.	गुजराती नाट्य - 1955	पृ. 27
6.	हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य	पृ. 317
7.	रंगमंच-कलामंदिर ग्वालियर 1981-82	पृ. 26
8.	रंगमंच कलामंदिर ग्वालियर 1981-82	पृ. 26
9.	आज के रंग नाटक - डॉ. बिन्दु भट्ट	पृ. 122
10.	नटरंग कला और दृष्टि - गोविन्द चातक	पृ. 174
11.	नटरंग, अंक-6	पृ. 54
12.	रंगमंच सरोकार - सतीश दवे	पृ. 70
12a.	वही	पृ. 71
12b.	वही	पृ. 71
12c.	वही	पृ. 71
13.	वही	पृ. 72
14.	वही	पृ. 72
15.	नाटक और रंगमंच-ललित कुमार शर्मा 'ललित'	पृ. 153